प्राकृत– साहित्य में ध्वनि–तत्व

*गोरे लाल मीना

शोध सारांश

आचार्य विश्वनाथ कविराज ने अपने प्रसिद्ध काव्यानृशासन 'साहित्य दर्पण' मे ध्वनि–तत्व से सम्पन्न काव्य को उत्तम काव्य को संज्ञान दी हैः 'वाच्यातिशायिनि व्येड्.ग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्।' (अध्याय : कारिका) अर्थात् वाच्य से अधिक चमत्कार जनक व्यंग्य को ध्वनि कहते है और जिस काव्य में ध्वनि की प्रधानता होती है, उसे ही उत्तम काव्य कहा जाता है। वस्तुतः व्यंग्य ही ध्वनि का प्राण है। प्रसिद्ध ध्वनि प्रवतंक आचार्य आनन्दवर्द्धन (नवीं शती) के अनुसार ध्वनि (ध्वन्+इ) काव्य की आत्मा है या वह एक ऐसा काव्य विशेष है, जहाँ शब्द और अर्थ अपने मुख्यायं को छोड़ किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करते है।[1] वस्तुतः ध्वनि, काव्य के सौन्दर्य विश्वायक तत्वों में अन्यतम है।

सभी विद्याएँ व्याकरणमूलक है, इसलिए ध्वनि का आदि स्त्रोत वंयाकरणों के स्फोट–सिद्धान्तों में निहित है। 'ध्वन्यालोक' की वृत्ति से स्पष्ट है कि साहित्य शास्त्रियों ने 'ध्वनि' शब्द को वंयाकरणों से आयत्त किया है।[2] वंयाकरण के अनुसार स्फोट को अभिव्यक्त करने वाले वर्णो को ध्वनि कहते है। प्रसिद्ध वंयाकरण आचार्य भर्त्तृ हरि ने 'वापयपदीय' मे कहा है कि वर्णों के संयोग और वियोग, अर्थात् मिलने और हटने से जो स्फोट उत्पन्न होता है, शब्द या वर्ण–जंनित वही शब्द ध्वनि है।[3] और फिर, स्फोट का परिचय या परिभाषा प्रस्तुत करने के क्रम में आचार्य भर्त्तृ हरि ने कहा है कि शब्द के दो भेदों–प्राकृत और वंकृत में प्राकृत ध्वनि स्फोट के ग्रहण में कारण है। शब्द की अभिव्यक्ति से जो आवाज होती है, वह वंकृत ध्वनि है और वह भी स्फोट स्वरूप ही है। वस्तुतः ध्वनि और स्फोट में एकात्मता है।

ध्वनिवादी आचार्य रस को ध्वनि का अंग मानते है। उन्होने ध्वनि के मुख्यतः तीन भेदों का निर्देश किया है– वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि ओर रस ध्वनि। आनन्द वर्द्धन ने रस को व्यंग्य कहा है, अर्थात् रस तो ध्वनि–रूप ही हो सकता है, उसका रूथन नहीं किया जा सकता। और फिर, ध्वनि के बिना रस की व्यंजना सम्भव ही नहीं है। रस अनिवार्यताः ध्वनि–रूप है और रस ध्वनि ही सर्वोत्तम ध्वनि है और वही काव्य की आत्मा हैः 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति।'–ध्वन्यालोक।

साहित्य शास्त्रियों के मतानुसार पाँच हजार तीन सौ पचपन प्रकार की ध्वनियाँ होती है, परन्तु ध्वनि के शुद्ध भेद कुल इवयावन है। इनमें भी कुल अट्ठारह ध्वनियों को ही प्रमुखता प्राप्त है; जैसे अयं शवत्युद्भव ध्वनि के बारह भेदों के अतिरिक्त शेष छः इस प्रकार है– शब्द शवत्युद्वभव वस्तुध्वनि, शब्दशवत्युद्भव अलंकार ध्वनि; शब्दांयश शवत्युद्वभव वस्तु ध्वनि, असंलक्ष्य क्रम ध्वनि तथा अविवदित वाच्य के दो भेद अर्थान्तर संकमितवाच्य एवं अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि।[5]

प्राकृत के उत्तम महाकाव्यों में ये समस्त ध्वनि–भेद गवेषणीय है, क्येकि उनमें ध्वनि–तत्व की समायोजना विशेष रूप से हुई है। तभी तो ध्वनि शास्त्रियों ने ध्वनि–तत्व की विवेचना के रूप में प्राकृत गाथाओं को साग्रह सन्दर्भित किया है। आनन्दवर्द्धन और विश्वनाथ के लिए तो प्रसिद्ध प्राकृत–काव्य 'गाहासत्तसई' इस प्रसंग में विशेष उपभोग्ता रही है।

ईसवी प्रथम शती के ख्यातनामा प्राकृत–कवि राजा हाल सातवाहन की प्रसिद्ध शतक–काव्यकृति 'गाहासत्तसई' शास्त्रीय महाकाव्य को परिभाषा को सोमा मे यद्यपि नही आती है, उसकी गणना प्राकृत–मुक्तीक काव्य में होती है, तथापि अपनो गुणात्मक विशिष्टता से वह महाकाव्यत्व को गरिमा अवश्य ही आयत्त करती है, जिस प्रकार महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' काव्य खण्ड़ काव्य होते हुए भी अपने रमात्मक गुणवंशिष्ट्य से महाकाव्यत्व के मूल्य का अधिकारी है। इसे महाकवि माद्य के 'शिशुपालवघ को समकक्षता प्रदान कर कहा गया है: 'माघे मेघे गंतवयः।'

महाकवि की वाणी–रूप काव्य में निहित उसके अंग रूप अलंकार आदि में व्यंग्य या ध्वनि की स्यिति उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार सुन्दरियों के प्रत्यक्ष दृश्यमान अवयवों के सौन्दर्य के अतिरिक्त उन अंगो में मोती के आव या छाया को तरलता की तरह चमकेने वाला लावण्य या लुनाई कुछ और ही होती है। जिस प्रकार लुनाई प्रत्यक्ष न होकर प्रतीयमान होती है, उसी प्रकार ध्वनि या व्यंग्य की प्रतीति होती है।

प्रतीयमानं पुश्ररन्वदेव वस्त्वस्ति वाणी षु महाकवीनाम्।
यतत्वसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यभिवाङ्गनासु।।

(ध्वन्यालोकः कारिका–सं० 4)

ध्वनिवादी साहित्यस शास्त्रियों ने अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि के उदाहरण मे 'गाहामत्तई' की इस गाथा को बहुशः सन्दर्भित किया हैः

भम घम्मिअ वीसत्थो सो सुणओ अज्जमारिओ देश।
गोलानई कच्छ कुडंग वासिणा दरिअसोहेण।।

(शतक 2 : गाथ 75)

इस गाथा मे किसी अभिसारिका नायिका के एकान्त संकेत–स्थल, गोदावरी नदी के तटवर्त्ती कुंज में फूल चुनने के लिए पहुचे हुए विघ्न स्वरूप किसी धार्मिक से वह नायिका कहती है कि हे धार्मिक! आप गोदावरी नदी के तटवर्त्ती कुंज मे निर्भय भाव से भ्रमण करे, क्योकि आज कुंज में रहने वाले मदमत्त सिंह ने आपको तंग करने वाले कुत्ते को मार डाला है। नायिका के इस कथन में कुत्ते से डरने वाले धार्मिक के लिए सिंह से मारे जाने का भय उत्पन्न करके कुंज में उसके भ्रमण का निषेध किया गया है। यहाँ विधिरूप वाच्य में प्रतिपेध–रूप व्यंग्य का विनियोग हुआ है। इस गाथा में वाच्य या मुख्य अर्थ से व्यंग्य की सर्वाथा भिन्नता के कारण ही वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि की योजना हुई है।

'गाहासत्तसई' मे ही अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि का एक और उदाहरण इस प्रकार हैः

घरिणीए महाणम कम्प लग्गमसिमलिइएण हत्थेण।
छिंत मुहं हसिज्जइ चंदावत्थं गअं पइणा।।

(तत्रैवः गाथा–स० 13)

इस गाथा मे एक ऐसी नायिका का चित्रण है, जिसके हाथ रसोई के काम में लगे रहने के कराण मलिन हो गये है। उस नायिका ने उन्हीं मलित कालिख लगे हाथों से अपने मुँह को छुआ है, जिससे उसके मुँह मे कालिख लग गई

है, जिसे देखकर उसका पति उपहासपूर्वक कहता है कि कालिख–लगा तुम्हारा मुँह लाछान–युक्त चन्द्रमा के समान प्रतीत होता है। यहाँ विरूपता भी प्रकृति बन जाती है। कुल स्त्रियों के लिए गृहकार्य से विमुख होना ही अनुचित है, यही यहाँ ध्वनि है, जो वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न या तिरस्कृत होने के कारण अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसे वस्तु से वस्तु ध्वनि या वाच्यार्थ का रूपान्तर होने से अर्थान्तर संक्रमित–वाच्य ध्वनि भी कह सकते है।

घण्टा बजाने के बाद उससे निकली रनरनाहट की जो सूक्ष्म आवाज गूँजती है, वही ध्वनि है। इसी प्रकार काव्य की ध्वनि वाच्य अर्थ से निकले भिन्न अर्थ में निहित रहती है, जिसकी गूँज की प्रतीति सहृदयों को होती है। पाँचवीं शती के कूटस्थ प्राकृत–महाकवि प्रवरसेन–प्रणीत 'सेतु बन्ध' महाकाव्य की, सागर–वर्णन से सम्बद्ध इस गाथा में अंकार से अनुरणित वस्तु ध्वनि की मनोज्ञता द्रष्टव्य हैः

उक्खअदुमं व सेलं हिमहअकमलाअरं व लच्छि विमुक्कं
पीअमइरं व चसअं बहुलपओसं व मुद्धचंदविरहिअं।।

(आश्वास 2ः गाथा 11)

कवि की उत्प्रेक्षा है कि समुद्र उस पर्वत के समायन लगता है, जिससे पेड़ उखाड़ लिये गये हो, वह समुद्र उस श्रीहीन सरोवर जैसा प्रतीत होता है, जिसका कम लवन तुषार से आहत हो गया हो, वह उस प्याला के समान दिखाई पड़ता, जिसकी मदिरा पी ली गई हो और वह उस अन्धकारपूर्ण रात्रि की तरह मालूम होता है, जो मनोरम चन्द्रमा से रहित हो।

समुद्र के सन्दर्भ मे महाकवि की इस उत्प्रेक्षा (अलंकार) से समुद्र के विराट् और भयजनक रूप जैसी वस्तु ध्वनित या व्यंजित होती है।
इसी क्रम मे महाकवि प्रवरसेन द्वारा आयोजित अलंकार से वस्तु ध्वनि का एक और मनोरम चमत्कार इस गाथा में दर्शनीय बन पड़ा हैः

ववसाअरइपओसो रोस गइंददिढसिंखलापडिबंधों।
कह कहवि दासरहिणो जअकेसरिपंजरोगओ घणसमओ।।

(आश्वास 1 : गाथा 14)

यहाँ राम के वर्षाकाल बिताने का वर्णन है। कवि श्रेष्ठ प्रवरसेन ने रूपक अलंकार के द्वारा यह निर्देश किया है कि वर्षाकाल का समय राम के पुरूषार्थ–रूप सूर्य के लिए रात्रिकाल बन गया था उनके रोष–रूप महागाज के लिए मजबूत जंजीर का बन्धन हो गया था और उनके विजय–रूप सिंह के लिए पिंचड़ा बन गया था। अर्थात् वर्षावास की अवधि मे राम न तो पुरूषार्थ का प्रदर्शन कर सकते थे, न ही अपने रोष व्यक्त कर सकते थे और न विजय के लिए अभियान ही कर सकते थे। अतएव, महाकवि के इस वर्णन मे रूपक अलंकार के माध्यम से राम की किंकर्त्तव्यविमूढ़या–रूप वस्तु की व्यंजना हुई है, जो अंलकार से वस्तु ध्वनि का उदाहरण है।

वाक्पतिराज (आ० वघइराअ) आठवीं शती के प्राकृत–महाकवियों में पांक्तिय है। इनके कालोत्तीणं महाकाव्य 'गडडवहो' में ध्वनि–तत्त्वों का भूरिशः विनियोग, विविघता और बहुलता, दोनों दृष्टियों से हुआ है। महाकवि के इस काव्य मे अलंकार से वस्तु ध्वनि और वस्तु से अलंकार ध्वनि की विशेष आयोजना की गई है। यहाँ अलंकार से अर्थशवत्युद्भव वस्तु ध्वनि से युक्त एक गाथा उपन्यस्त हैः

गणवइणो सइ–संगअ–गोरी–हर. पेम्म–राअ–विलिअस्स।
दंतो वाम–मुहद्धंत–पुंजिओ जअइ हासो व्व।। (मंगलाचरण : गाथा–सं० 54)

यहाँ महाकवि ने निर्देश किया है कि सदा साथ रहने वाले अपने माता–पिता पार्वती और शिव के प्रेम और अनुराग से लजीले गणेश का दाँत उनके मनोहर मुख के कोर पर संचित या पुंजीभूत हास की तरह प्रतीत होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ मे 'हासोव्व' इस उपमा (अलंकार) द्वारा गणेश की सर्वागगौरवा–रूप वस्तु ध्वनित है।

इसी क्रम में महाकवि वघइराअ की वाक्यगत कवि–प्रोढोक्तिमात्र सिद्ध वस्तु से अलंकार ध्वनि की एक मनोहारी योजना इस गाथा में द्रष्टव्य हैः

णिद्दरूवेण पअं णिमेसि जण–लोअणेसु तं चेअ।
पडिवोहे जेण स–जावअ व्व लक्खिज्जए दिट्ठी ।।

(विन्ध्यवासिनी–स्तुति : गाथा 296)

यहाँ, सोकर जगने पर दिखाई पड़ने वाली आँखो की लाली के बारे में कवि की कल्पना है कि आँखो मे निद्रा–रूपी भगवती के महावर–लगे पैर रखने से उनमे लालिमा आ गई है। इस प्रसंग में लाक्षारंजित चरणा निद्रा–रूपी भगवती के पदक्षेप के कारण ही आँखों के रंजित होने की उत्प्रेक्षा वस्तु से अलंकार–ध्वनि का उदाहरण है और भगवती का नेत्र मे प्रवेश वाक्यगत कवि प्रोढ़ोक्तिमात्र सिद्ध वस्तु है। इसी कति–कल्पित वस्तु से मार्कण्डेय पुराण मे वर्णित निद्रा–रूप मे संस्थित भगवती दुर्गा की स्तुति की ओर भी सहज संकेत हुआ है– 'या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।'

वघइराअ के द्वारा उपस्थापित वस्तु से वस्तु ध्वनि का एक रमणीय उइाहरण द्रष्टव्य हैः

अद्धेण सरीरेण च्चिअणबर ससिसेहरस्स तं वससि।
हिअए उण से संकठि हुए अविहासण ओआसो।।

(तत्रैव : गाथा 292)

इस गाथा मे महाकवि के कथन का अर्थ यह है कि भगवती विन्ध्यवासिनी बाह्य रूप से भले ही अर्धनारीश्वर शिव के आधे शरीर मे वास करती है, परन्तु उनके ह्रदय मे तो वह समग्र रूप से निवास करती है। यहाँ ह्रदय से समग्रतय निवास–रूप वस्तु से शिव के प्रति भगवती के अनुरागाधिक्य–रूप वस्तु ध्वनित होती है। इसमें वाच्यार्थ विवक्षित या वांक्षित होकर अनुरागाधिक्य–रूप व्यंग्यार्थ का बोधक है। इसलिए, इसमें विवक्षितान्यपर वाच्य ध्वनि है। इसमे वाच्यार्थ का न तो दूसरे अर्थ मे संक्रमण हुआ है और न सर्वथा तिरस्कार, वरन् वह विवक्षित है।

कहना न होगा कि 'गउडबहो' की 'विन्ध्यवासिनी–स्तुति' मे वाच्यातिशायी व्यंग्य की प्रधानता प्रायः प्रत्येक गाथा मे परिलक्षित होती है, जो 'गउडवहो' मे ध्वनि–तत्तव के अनुसन्धित्सुओं को साग्रह आमन्त्रित करती है।

ध्वनि–तत्त्व की समृद्धि की दृष्टि से विक्रम की बारहवीं शती के महाकवि आचार्य हेमचन्द्र का द्वयाश्रय महाकाव्य 'कुमारबालचरियं' तो सविशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहाँ आचार्य महाकवि के द्वारा प्रस्सुत वाक्यगत कवि प्रोढ़ोक्तिमा सिद्ध अलंकार से अलंकार ध्वनि का एक उदाहरण विन्यस्त हैः

जस्सिं सकलंकं वि हु रअणी–रमणं कुणंति अकलंक।
संखधर–संख–भंगाज्जलाओ भवणंसु–भंगीओ।

(सगं 1: गाथा–सं० 16)

अर्थात्, राजा कुमारपाल की राजधानी अणहिलपुर के भवनों जड़े हुए रत्नों की कान्ति सकलंक चन्द्र की भी निष्कलंक बनाती है। यहाँ वाक्यगत वर्णन मे उपमान चन्द्र की अपेक्षा उपमेय रत्न कान्ति को श्रेष्ठ बताने वाले

व्यतिरेक अलंकार के माध्यम से अणहिलपुर की समृद्धि का बढ़ा–चढ़ाकर वर्णन–रूप अतिशयोक्ति अलंकार ध्वनित है। साथ ही, कलंक चन्द्र को निष्कलंक बनाने की बात कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु है।

आचार्य महाकवि द्वारा आयोजित पद गत अत्यन्त तिरस्कृत या अविवक्षित वाच्य ध्वनि का हृदयावर्जक उदाहरण निम्नांकित गाथा मे दर्शनीय हैः

जत्थ भवणाण अवरिं देवं–नागेहिं विम्हया दिट्ठ।
रमइ मणोसिलगोरो मणसिललित्तो मयच्छिजणो।।

(सगं 1 : गाथा–सं० 13)

यहाँ कवि के वक्तव्य का आशय यह है कि अणहिल नगर के गगन चुम्बी भवनों के ऊपर क्रीडारत देवागंना–स्वरूप चपलनयना सुन्दरियों या राजवधुओ को आकाशचारी देव और नागकुमार विस्मयान्वित होकर देख रहे थे। वे सुन्दरियाँ मैनसिल के धातु की तरह गोरी थी और उनका गोरा शरीर मैनसिल के विलेपन से युक्त था।

इस प्रसंग मे महाकवि द्वारा प्रयुक्त 'मयच्छिजणो' (मृगाक्षिजनः अथवा 'मदा–क्षिजनः') शब्द या पद मे अध्यत्रसित उपमेय चंचल यामदविह्वल आँखों का झटिति बोध हो जाता है। 'मयच्छि' शब्द या पद अपना मुख्य अर्थ छोड़कर हिरण की तरह चंचल या मद घूर्णमान आँख का अर्थ देने से जहत्स्त्रवार्था लक्षणा है।

यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य से यह ध्वनि निकलती है कि सुन्दरियों की मनोज्ञ आँखो हरिण की आँखो की तरह आयत एवं चंचल या फिर मदालस होने के कारण दर्शनीय है और मयच्छि मे व्यंजना के गर्भित होने के कारण यह पदगत श्लेष की अलंकार ध्वनि का भी उदाहरण है।

आचार्य हेमचन्द्र द्वारा उपस्थापित संलक्ष्यक्रम रस ध्वनि का एक निदर्शन दर्शनीय हैः

जमुण गमेघि गमेघिणु जन्हवि
गम्पि सरस्सइ गम्पिणु नम्मद।
लोउ अजाणउ जं जलि बुड्डइ
नं पसु किं नीरड् सिव–सम्मद।। (तत्रैव, 8.8०)

अर्थात्, गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा आदि नदियो मे स्नान करने से यदि शुद्धि हो, तो महिष आदि पशुओं की भी शुद्धि हो जानी चाहिए, क्योकि वे भी इन नदियों मे डुबकी लगाते ही रहते है। जो लोग अज्ञानतापूर्वक इन नदियों मे स्नान तो करते है, पर अपन आचार–विचार को शुद्ध नही करते, उन्हे कुछ भी लाभ नही हो सकता।

प्रस्तुत प्रसंग मे महाकवि की काव्यभाषिक उक्ति मे व्यग्य रूप से शान्तरस की प्रतीति होती है। और फिर, स्नान के बाद मुक्ति का क्रम भी यहाँ लक्षित हो रहा है, साथ ही वाच्यार्थ–बोधपूर्वक ध्वनि रूप में शान्तरस भी अभिव्यंजित है।

नवीं–दसवी शती के प्रख्यात महाकवि को ऊहल ने अपने रोमानी अथवा कल्पना प्रधान 'लीलावई' महाकाव्य मे ध्वनि–तत्त्व के अनेक अनुशीलनीय आयामो की उपस्थापना की है। युद्धवीर राजा सात वाहन की प्रशस्ति मे लिखित निम्नांकित गाथा में महाकवि द्वारा विनियुक्त अभिधामूलक, यानी विवक्षितान्य पर वाच्यरस–ध्वनि की मनोरमता अतिशय मोहन हैः

णिय–तेय–पसाहिय–मंडलस्स ससिणो व्व जस्स लोएण।
अक्कंत–जयस्स जए पट्ठी न परेहि सच्चविया।।

(लीलावई : गाथा–सं० 68)

महाकवि का कथन है कि उस प्रतापी राजा सातबाहन ने अपने पराक्रम से समस्त संसार को जीत लिया है, पर शत्रुओं ने उसकी पीठ उसी प्रकार नही देखा है, जिस प्रकार अपने तेज के प्रकाश से संसार को धविलित करने वाले चन्द्रमा का पृष्ठ भाग किसी ने नहीं देखा है। यहाँ चन्द्रमा का पृष्ठ भाग उपमान है ओर राजा का पृष्ठ भाग उपमेय। इसी प्रकार चन्द्रमा और राजा के तेज में भी उपमानापमेय–भाव है। इस चारूतापूर्ण उपमान और उपमेय के आयोजन द्वारा महाकवि को ऊहत ने यहाँ राजा की अतिशय पराक्रमशीलता–रूप वीररस की ध्वनि का विन्यास किया है। इसे उपमा अलंकार से राजा के शौर्य–रूप वस्तु की ध्वनि, अर्थात् अलंकार से वस्तु ध्वनि का उदाहरण भी माना जा सकता है। इसमें वाच्यार्थ विवक्षित् या वांछित होकर अन्य पर अर्थात् व्यंग्यार्थ का बोधक है।

इसके वाच्यार्थ का न तो दूसरे अर्थ में संक्रमण होता है और न सर्वंथा तिरस्कार, बल्कि वह विवक्षित रहता है, इसलिए यह अभिधामूलक या विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का उदाहरण है।

'लीलावई कहा' में ध्वन्यात्मक, अलंकृत और रसमय वर्णनों का बाहुल्य है। निम्नांकित गाथा में भ्रान्तिमान् अलंहकार से वस्तु ध्वनि की आवर्जकता द्रष्टव्य है :

घर–सिर–पसुत्त–कामिणि–कवोल–संकेत–ससि–कला–वलयं।
हंसेहि अहिलसिज्जइ मुणाल–सद्धालुएहि जहिं।।

(गाथा–सं० 60)

यहाँ रस सिद्ध कवि ने भवन की छत पर सोई हुई कामिनियों का चित्रण किया हैं, जिनके कपोलों में प्रतिबिम्बत चन्द्रकला को मृणाल समझकर हंस उसे प्राप्त करना चाहता है। यहाँ हंस को चन्द्रकला में मृणाल का भ्रम हो रहा है। अतः भ्रातिन्मान् अलंकार के माध्यम से कवि ने कामिनियों के कपोलों की सौन्दयतिशयता –रूपवस्तु संकेतित की है, जो अलंकार से वस्तु ध्वनि का उदाहरण है।

इसी क्रम में व्यतिरेक अंलकार के माध्यम से वस्तु की ध्वनि का एक और मनोहारी उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

जस्स पिय–बंधवेहिव चउवयण–विणिगएहि वेएहि।
एवक–वअणारविंदट्टिएहि बहु–मण्णिओं अघा।

(गाथा–सं० 21)

अर्थात्, बहुलादित्य के प्रिय बान्धवों ने ब्रह्या के चार मुखों से निकलने चारों वेदों को उसके एक ही मुख में स्थित होने से अपने की कृतार्थ समझा।

यहाँ ब्रह्या के चार मुखों से निकले चारों वेंदों बहुलादित्य के एक ही मुख में अवस्थिति–रूप व्यतिरेक अलंकार से उस वेदज्ञ की प्राकृत महाकाव्यों में प्राचुर्य है। जब एक और जब तिले और ताण्डुल की भाँति मिलती हैं, तब ध्वनि–संसृष्टि होती है। ध्वनि–संसृष्टि का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

अणकढिअ–दुद्ध–सुइ–जस पयाव–धम्मट्टिआरि–जस–कुसुम।
तुह गंठिअबूहे णं विरोलिओ तस्स पुर–जल हि।।

(कुमारवाल चरिय : 6.81)

इस गाथा में दशार्णपति–विजय के बाद प्रतापी राजा कुमारपाल की सेनाओं द्वारा उसकी नगरी को लूट लिये जाने का वर्णन है।

यहाँ, (क) कीर्ति का अमथित दुग्ध के समान श्वेत होना रूप कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से राजा के निष्कलंक गुणों से

मण्डित व्यक्तित्व–रूप की ध्वनि हैं। गौणी लक्षणा से इसका ध्वन्यर्थ होगा कि राजा के आचार और विचार सर्वतोविशुद्ध हैं। पुनः (ख) अचेतन तेज और प्रताप की उष्णता से अचेतन कीर्ति पुष्प का मुरझाना (पयाव घम्मट्टि) आरि–जस–कुसुम) सम्भव नहीं। यहाँ मुख्यार्थ बाधित हैं। गौणी लक्षणा से इसका ध्वन्यर्थ होगा– कुमारपाल के रोब–रूआब के सामने दशार्णनरेश का रोब–रूआब बहुत घटकर है। और फिर (ग) नगर के समुद्र (पुर–जलही) होने में मुख्यार्थ की बाधा है। इसका गौणी लक्षणा से अर्थ होगा दशार्णनुपति है, का नगर वहाँ के अतिशय धनाढ्य नागरिकों द्वारा संचित मणि–रत्नों से परिपूर्ण हैं, इसलिए वह नगर रत्नाकर या समुद्र के समान हैं, यही ध्वनि हैं। चूंकि इस वर्णन में महाकवि द्वारा आयोजित सभी ध्वनियाँ स्वतन्त्र हैं, इसलिए ध्वनियों की संसृष्टि हुई हैं।

अन्त में यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि प्राकृत के महाकवियों ने अपने उत्तम महाकाव्यों में ध्वनि–तत्त्व को आग्रहपूर्वक प्रतिष्ठित किया है। इसके लिए उन्होंने जिस काव्यभाषा को अपनाया हैं, उसमें पदे–पदे अर्थ ध्वनि और भाव ध्वनि का चमत्कारक विनिवेश उपलब्ध होता है। सच पूछिए तो, प्राकृत–महाकवियों की काव्य भाषा ही अपने विनियोग–वैशिष्ट्य से ध्वन्यात्मक बन गई है। चमत्कारी अर्थाभिव्यक्ति के कारण प्राकृत के प्रायः सभी महाकाव्य ध्वनि काव्य में परिगणनीय है। विशेषतया, 'सेतु बन्ध' और द्वष्टि से उपादेय आकार–ग्रन्थ हैं।

वस्तुतः, प्राचीन शास्त्रीय प्राकृत–महाकाव्यों में प्रतिपादित ध्वनि–तत्त्व का अध्ययन एक स्वतन्त्र शोध–प्रबन्ध का विषय है इस निबन्ध में तो प्राकृत के प्रमुख शास्त्रीय महा–काव्यों में प्राप्य ध्वनि–तत्त्व की इंगिति–मात्र प्रस्तुत की गई है।

*** व्याख्याता**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, करौली, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. (अ) अर्थः सहृदयश्लाध्यः काव्यात्मायोव्यवस्थितः।

–ध्वन्यालोक, उद्योत 1, कारिका 2

(ब) यत्रार्थः शब्दों वा तमर्थमुपर्सजनीकृतस्वार्थौ।

व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।।

2. प्रथमे हि विद्वांसोस वैयाकरणाः व्याकरण मूलत्वात् सर्वविद्यानाम्।

तेषु च श्रूयमाणेषु वणेसु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति।। –तत्रैव

3. यः संयोग वियोगाभ्यां करणें रूपजायते।

स स्फोटः शब्दजः शब्दों ध्वनिरित्युच्यते बुर्धेः।।

–वाक्यपदीय, प्रथम काण्ड

4. स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतों ध्वनिरिष्यते।

शब्द स्योर्ध्वमभिव्यक्तेवृंक्तिभेदे तु वैंकृताः ।।

ध्वनयः समुपोहन्ते स्फोटात्मा तैंनभिद्यते।। –तत्रैव

5. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्यः 'ध्वन्यालोक', द्वितीय उद्योत तथा 'साहित्य दर्पण', चतुर्थ परिच्छेद।